ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.20, No.1, Jan. – Mar., 2025/19

भगवान बुद्ध एवं उनकी शिक्षाओं में पर्यावरण

निशा सरोज एवं ऋचा पाठक

https://doi.org/ 10.61410/ had.v20i1.223

सारांशः–

बुद्ध का सम्पूर्ण जीवन दर्शन जीव जन्तु एवं पर्यावरण का उदाहरण है। बुद्ध के अनुसार मानवीय गुण सुकर्मों के माध्यम से ही समस्त अवधारणाएँ, विचार आदि इसी पक्ष को उजागर करती है कि मानवीय गुण स्वस्थ पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण में ही प्रस्फुटित हो सकते हैं। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन आज मानव जीवन के लिए गम्भीर मुद्दा है। यह सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था एवं पारिस्थितिक प्रणाली के माध्यम से जीवन यापन को प्रभावित कर रहा है। ऐसी स्थिति में भगवान बुद्ध और उनकी शिक्षाओ में पर्यावरण एवं पर्यावरण संरक्षण का ज्ञान महत्वपूर्ण कारक बना।

शब्द संकेतः–

पर्यावरण, पर्यावरण संरक्षण (इकोलॉजी), जलवायु परिवर्तन, स्वस्थ पारिस्थितिकी, जीव जन्तु एवं पौधा।

प्रस्तावना–

बुद्ध का जन्म कपिलवस्तु के राज महल में नहीं अपितु लुम्बिनी वन में एक पेड़ के नीचे हुआ था। बचपन से ही अहिंसा का पाठ उनके जीवन से सिखने को मिलता है। घायल हंस को बचाना एवं अपने सहृदय देवदत्त को यह कह कर मना कर देना कि मारने वाले से बचाने वाले का अधिकार अधिक होता है। इनके जीव प्रेम का अत्यंत सजीव एवं मनोरम होने के साथ ही जीव हिंसा से भी बचने का सीख देता है। अल्पायु में ही वैराग्य तथा निरंजना नदी के किनारे पीपल वृक्ष के नीचे इन्हें सम्बोधि अर्थात ज्ञान प्राप्त हुआ था। पहला धर्मोपदेश (धम्म चक्र प्रवर्तन) भी बुद्ध ने मृग तथा अन्य पशुओं से परिपूर्ण मृगदावन (ऋषिपत्तनम मृगदाव, सारनाथ) में दिया। उनका महापरिनिर्वाण भी कुशी नगर के सालवन में हुआ था। पीपल वृक्ष के चमत्कारिक प्रभाव को तो वैज्ञानिक आज हमें बता रहे हैं, लेकिन भगवान बुद्ध ने उसकी महता आज से ढाई हजार वर्षों पहले पता कर ली थी।

गौतम बुद्ध ने भारतीय भूमि से सम्पूर्ण विश्व को बौद्ध सिद्धांतों से परिचित कराया। उन्होंने ऐसे विश्वास का पोषण किया, जिसके मूल में मानव हैं। इसी के साथ ही उन्होंने ईश्वर की श्रेष्ठता नकार कर मानवीय श्रेष्ठता को स्थापित किया। उन्होंने ऐसे समाज की रचना की जहाँ अलौकिकता बाहरी दुनिया से नहीं बल्कि मनुष्य के अंर्तमन में निहित है। अपने सिद्धान्त के तीन शब्द "अप्प दीपो भव" अर्थात अपना दीप स्वयं बनो के आधार पर भगवान बुद्ध ने मानवता को महान प्रबंधनीय सिख प्रदान की। उन्हें मानव पीडा को पैदा करने वाले विचारहीन संघर्षों से बहुत ही दुख होता था। उनके विश्व दृष्टिकोण में अहिंसा मूल सिद्धान्त है। बौद्ध साहित्य विनय पिटक में मानवीय तत्वों का निर्धारण और उसक अनुपम जीवन संचालन इसी श्रमण परम्परा की देन रही है। विनय पिटक में मानवीय गुण सुकर्मों के माध्यम से ही समस्त अवधारणाएँ, विचार आदि इसी पक्ष को उजागर करती है कि मानवीय गुण स्वस्थ पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण में ही प्रस्फुटित हो सकते हैं।[1]

जलवायु परिवर्तन आज मानव जीवन के लिए गम्भीर मुद्दा है। यह सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था एवं पारिस्थितिक प्रणाली के माध्यम से मानव को प्रभावित कर रहा है। अफ्रीका, युरोप, एशिया, कनाडा और अमेरिका के धर्मशिक्षकों के एक समूह ने जलवायु संकट पर एवं इसके संभावित दुखद परिणामों को कम करने के तरीकों में बौद्ध अंतदृष्टि का सहारा लिया है।[2]

- **शोध छात्रा, का० सु० साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या।**
- **असिस्टेंट प्रोफेसर – प्राचीन इतिहास, का० सु० साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या।**

बौद्ध धर्म के अनुसार प्राकृति एवं मनुष्य के मध्य कोई विशेष अन्तर नही हैं। जिस प्रकार जल चक्र, कार्बन चक्र एवं खाद्य चक्र होता है ठीक उसी प्रकार कर्म एवं पुनर्जन्मों का चक्र भी होता है। [3]

प्राचीन काल में यज्ञों का काफी प्रचलन था, जिसमें स्वर्ग प्राप्ति के लिए तथा चक्रवर्ती राजा बनने के लिए विभिन्न प्रकार के यज्ञों का सम्पादन करते थे। इन यज्ञों में जानवरों की बलि दी जाती थी। तत्कालीन समय के कुटदन्त नामक ब्राह्मण का उल्लेख है [4] कि उसने यज्ञ की तैयारी की जिसमें सात सौ बैल, सात सौ बछिया, सात सौ बछडे, सात सौ गाय एवं सात सौ बकरियों की बलि देने का प्रबंध किया। यज्ञ के लिए हजारों वृक्षों को भी काटा गया। बुद्ध ने देखा कि इस तरह तो पर्यावरण संतुलन ही बिगड जायेगा, इसलिए उन्होंने इस प्रकार के यज्ञों का विरोध किया। उन्होंने कहा कि इस तरह के हिंसायुक्त खर्चीले यज्ञ महाफलदायक नहीं होते हैं और इस प्रकार के यज्ञों में सदाचारी व्यक्ति नहीं जाते है। बुद्ध इस बात को भली भाँति जानते थे कि पशु पक्षियों की हत्या से पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पडता है। इसलिए पंचशील के पहले ही शील में किसी भी प्राणी की हिंसा न करने का प्रावधान किया है। बुद्ध ने कहा है ''जैसा मैं हूँ वैसे ही अन्य प्राणी हैं।'' [5]

अतः न जीव हत्या करो और न किसी को ऐसा करने की अनुमति दो। बुद्ध ने पशु पक्षियों की योनि में बोधिसत्व की कल्पना इसलिए की ताकी अनजाने में भी उनकी हत्या न हो।

उपनिषद् का वचन हैः–

"काम क्रोध लोभादयः पशवः" अर्थात काम, क्रोध, लोभ, मोह यह पशु है। इन्हीं को मार कर यज्ञ में हवन करना चाहिए। आलंकारिक रूप से यह आत्मशुद्धि की कुविचारों एवं पाप से बचने की शिक्षा है। बुद्ध ने भिक्षुयों की जो जीवन परिचर्या बनायी वह पर्यावरण के अनुकूल थी। इसलिए बौद्ध भिक्षुओं को बौद्ध विहार गाँव एवं नगरों के कोलाहलपूर्ण वातावरण से दूर जगलों में बनाने का निर्देश दिया और एक बात ध्यान देने योग्य है कि विहार ऐसी जगह हो जहाँ आसानी से हो सके। [6]

बौद्ध धर्म समस्त जंगलों की रक्षा नहीं कर सकता लेकिन जंगलों की प्रचण्ड विनाश का विरोध करता है। बुद्ध ने प्राकृतिक संसाधनों का अत्याधिक दोहन और प्रदूषण पर संवेदना व्यक्त की थी। लालच का प्रमुख कारण तृष्णा माना गया है। जिस प्रकार एक बौद्ध भिक्षु एक साधारण जीवन जीता है [7]

अगर मनुष्य बौद्ध धर्म के शिक्षाओं का अनुसरण करे तो सीमित संसाधनों का प्रयोग करके पर्यावरण को प्रदूषित करने से रोक सकता है। भगवान बुद्ध दूरदृष्टा थे, इसलिए उन्होंने प्रदूषण के समस्या के निदान के लिए अनेक विनय रूपी नियमों का प्रज्ञापन कर भिक्षुओं को हरित तृणों, घास तथा जीवनदायिनी जल को थूक, खर पतवार तथा मल मूत्र से प्रदूषित करने से वर्जित किया था। [8]

भगवान बुद्ध के समय प्रदूषण के यह समान उपादान थे, जो व्यवहारिक जीवन से संबंधित होने के साथ ही उनको अमल भी किया जा सकता था। भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को अमल में लाने की यह आज्ञा दी थी कि कूडा कचडे को यत्र तत्र न फेक कर एक सुनिश्चित स्थान पर फेकना चाहिए[9]

चुल्लवग्ग के पस्सावच्च मलावच्छरोपनदारूमंडादि कथा में भगवान बुद्ध ने विहार के यत्र तत्र मल मूत्र के उत्सर्जन का निषेध किया है। [10]

इधर उधर मल मूत्र त्यागने से विहार प्रदूषित होता है, जिससे आश्रम का दूर्गन्धपूर्ण वातावरण होने का भय रहता है। यह जानकर बुद्ध ने किसी निश्चित स्थान पर मलोत्सर्जन की अनुज्ञा प्रदान की थी। [11]

कूडेदान तथा उससे दूर्गन्ध न फैले इसलिए उसे ढकने का भी विधान किया गया था। [12]

धरती पर जीवन का आस्तित्व जैसा हम जानते हैं, मानवीय गतिविधियों, जिनमें मानवीय जीवन मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता का अभाव है। प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों का विनाश अज्ञान, लालच और पृथ्वी के जीवों के प्रति सम्मान के अभाव के परिणामस्वरूप होता है।[13]

सम्मान का यह अभाव धरती के मनुष्यों के भावी पीढियों तक पहूँचता है। अगर विश्व शांति यर्थाथ नहीं बनती और प्राकृतिक पर्यावरण का विनाश वर्तमान गति से चलता रहा तो भावी पीढी को जघन्य पर्यावरणीय समस्याओं का सामना करना पडेगा, जिसमें पीने के पानी से लेकर शुद्ध वायु तक पाना दूभर हो जायेगा। [14]

भगवान बुद्ध ने अनुभव किया था कि मावन जीवन के लिए पेड़ पौधे ही नहीं पशु पक्षी, कीडे मकोडे भी सहायक हैं। अतः उनके प्रति भी उनके मन में इतना करूणा भाव था कि हिंसक पशु भी उनकी सेवा करते थे। कौशाम्बी में तथागत बुद्ध पारलेय्यक वन को चले गये। वहाँ हाथियों ने सूं मं पानी ला लाकर उन्हें नहलाया था। वैशाली में आज भी मरकट ह्रदय विद्यमान है, जहाँ एक मरकट (बन्दर) ने तथागत बुद्ध के एक पत्ते के दोने में मधु लाकर दिया था। खुनी हाथी नालागिरी को अपनी मैत्री भावना से जीत कर विनित किया था। मूचलिंद नाग ने आँधी तूफान वर्षा में उनकी रक्षा की थी।[15]

भगवान बुद्ध ने पानी की शुद्धता पर बहुत बल दिये हैं, वे उसका दुरूपयोग निषिद्ध मानते थे। समुद्र के आठ गुण बतलाकर उन्होंने संसार को यह बता दिये हैं कि प्रकृति से उनकी कितनी गहरी आत्मीयता थी और वे कितने नजदीक थे। हमारे पूर्वजों ने धरती को समृद्ध और सम्पन्न दृष्टि से देखा था। अतीत में भी कुछ लोगों ने प्रकृति को कभी समाप्त न होने वाला और सदा बने रहने वाला माना था, जो अब हम जानते हैं कि ऐसा तभी हो सकता है जब हम उसकी देख रेख करें। अज्ञानता के कारण अतीत में हुए विनाश को भूला पाना कठिन है, जिसकी पूर्ति हम सघन वृक्षारोपण एवं अन्य प्रकृति सहभागी कार्य कलाप करके कर सकते हैं। यह आवश्यक है कि हम नैतिक रूप से पूर्नपरीक्षण करे कि हमने विरासत में क्या पाया है? हम किसके लिए उत्तरदायी हैं? और हम भावी पीढियों को क्या देकर जायेंगे? [16]

प्राकृतिक पर्यावरण से प्राप्त होने वाले लाभों का उपयोग अपरिग्रहपूर्वक होना चाहिये, लिप्सात्मक संग्रह की प्रवृति से नहीं। बौद्ध धर्म की इस दृष्टि का आधार न तो एक ही परम पिता की सन्तान होने के तर्क से मानव मात्र की बंधुता की मिथक पर आधारित है और न ही आज की तरह पर्यावरण के नष्ट होने के डर पर। भगवान बुद्ध अंहिसा और करूणा के उस भाव से अनुप्रमाणित हैं जिसमें मानव मात्र ही नहीं प्राणी मात्र भी समा जाते हैं। पर्यावरण से प्राप्त होने वाले लाभ प्रकृति से छीने गये उपादान नहीं है, अपितु उसके करूणा के प्रसाद है, जो बतौर दान के मिलने के कारण अपरिग्रह के आचरण करने वाले के लिए भी ग्राह्य है। उनका लिप्सापूर्ण संग्रह अधर्म है, पाप है। इसलिए नहीं कि इससे कोई देवता या परम पिता नाराज हो जायेंगे, अपितु इसलिए इससे कि बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के महा मूल्य का ह्रास होगा, कमजोर के मुख का निवाला छिनेगा, यह शोषण नहीं सहयोग और एक दूसरे के लिए उत्सर्ग पर आधारित है। प्राणियों की विभिन्न प्रजातियों के आपसी रिश्ते और समस्त प्राकृतिक पर्यावरण को अनन्त लिप्सा का ग्रास बना लेगी, तो आगामी पीढी का क्या होगा? तृष्णा अनन्त है और अनर्थकारी है। शक्ति संचय का उद्देश्य और अधिक शक्ति संचय नहीं अपितु उस शक्ति का प्रयोग 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के लिए होना चाहिए। [17]

भगवान बुद्ध का सम्पूर्ण जीवन दर्शन तो प्रकृति और प्राणीमात्र के बीच आदर्श ताल–मेल का उत्कृष्ट उदाहरण है। आज विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में कुंठा और अशांति है। जिसका एक मात्र विकल्प बौद्धिक इकोलॉजी का अनुसरण ही है। स्वस्थ पारिस्थितिकी के विषय में बुद्ध द्वारा उपदिष्ट दो गाथाएँ उद्धरणीय है–

"ये केचि पाण भूतत्थि तसा वा भावरा वा अनवसेसा
दीघा वा ये महंता वा मछिमा रस्सका अणुकथूला
दिट्ठा वा ये वा अदिट्ठा ये च दूरे वसंति अविदूरे
भूता वा सम्मवेशी वा सब्बे सत्ता भवन्तु सुखीत्ता" (करणी यमेत सुत गाथा सं0–4 व 5)

इसमें भगवान बुद्ध ने कहा है कि स्थावर या जंगम, दीर्घ या महान या मध्यम या छोटे या सूक्ष्म या स्थूल आँखों से दिखाई पडने वाले या आँखों से दिखाई पडने वाले जो दूर है या निकट, जो जन्म ले चुके हैं या जन्म लेने वाले हैं, ऐसे सभी प्राणी सुखी रहें। समान्त पासादिका में एक स्थान पर महावृक्ष के काटने मात्र पर पराजिक नामक अपराध से आपन्न होने का नियम ऐसा चिह्नित है। वृक्षों को काटना, वनस्पतियों को नष्ट करना इत्यादि से ही भगवान का अभिष्ट नहीं था। इनका मानना था कि वृक्षों तथा वनों से पर्यावरण शुद्ध रहता है। जिससे समाज को वन प्रभूत्व सम्पदाएं भी मिलती है। इसके साथ ही साथ वन्य प्राणी भी सुखी रहते हैं। भगवान बुद्ध हमेशा वृक्षारोपण की प्रशंसा करते हुए कहते थे कि उद्यानों में वृक्ष लगाने वाले, नदियों पर पुलों का निर्माण करने वाले, यात्रियों के लिए धर्मशाला, कुंआ तथा तालाब बनाने वाले तथा प्यासे को पानी पिलाने का पूण्य हमेशा बढता है।

"आराम रोपा व रोपा ये जना सेतु कारका
पपम् च उपादानम च ये ददाति उपस्यम्
तेसम दिवा च रतो च सदा पूण्यम् पवढति"[18]

गौतम बुद्ध उच्चाशय के प्रतिमान थे तथा कोलाहल के विरूद्ध थे। बुद्ध ने भिक्षु संघ की परिषद जहाँ कहीं भी होती थी, वहाँ कोई तथा किसी भी प्रकार का कोलाहल तथा घोष नहीं होता था। इनके परिषद पूर्णतः शांत होती थी। जीवक के साथ गौतम बुद्ध के दर्शन के लिए जाते समय अजातशत्रु को महाआश्चर्य हुआ कि साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के बृहद् संघ साथ रहने पर भी किसी वस्तु की ध्वनि तक नहीं हो रही थी।

"कथं हि नाम तवा महतो भिक्खु संघस्य अद्धतेलसतं नेव
खिपितसद्धो भविस्सति न उक्का सिता सद्धो न निग्धोसो ति" [19]

एक बार भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक संघ को कोलाहलपूर्ण वातावरण उत्पन्न करने पर विहार छोडने की आज्ञा तक दे डाली थी। [20]

इस प्रकार बुद्ध मधुर एवं शांत वाणी के समर्थक एवं प्रशंसक थे परन्तु आज ध्वनि विस्तारक यंत्रों के द्वारा तथा विविध यानों के कर्कस ध्वनि विस्फोट के कारण समस्त पर्यावरण व्याकुल है। भगवान बुद्ध का निवास हमेशा जंगलों एवं उद्यानों के बीच हुआ करता था। जिससे यह पता चलता है कि उन्हें प्रकृति से कितना प्रेम था। वे सदा एकान्त, शांत और प्रकृति सौन्दर्य से अनुप्राणित प्रदेश में ही रहना पसंद करते थे। वे भोजनोपरान्त ध्यान एवं समाधि भावना के लिए सुरम्य आरण्य प्रदेश में ही जाते थे। राजगीर के गिद्धकूट पर्वत पर उन्होंने धर्मदेशना दी है, जिससे यह ज्ञात होता है कि सुरम्य पर्वतों का दृश्य उन्हें अत्यधिक प्रभावित करता था। थेरगाथा में तो अनेक भिक्षुओं को सुन्दर एवं रमणीय स्थलों की प्रशंसा करते हुए देखा गया है। सुन्दर वातावरण व मौसम के बात वे सहज की व्यक्त करते हैं। कालुदायी नामक भिक्षु प्रफुल्लन एवं पुष्पाभरणों से समलंकृत वृक्षों की शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इन वक्षों ने फलों की पर्यवेषणा में पत्तों का परित्याग कर दिया। यह वृक्ष दीपशिखा के समान चमत्कृत है।

"अंगारिनों दानि दया विप्पहाय।
फलेसिनों छदनं विप्पहाय।।
तेअच्चिमंतो व प्रभासयनि।
समयो महावीर भागी रसानं।।
द्रुमानि फुल्लानी मनोरमानि।"

.....थेरगाथा, पृ0–139

भगवान बुद्ध की जीवन लीला यह सिद्ध करती है कि पर्यावरण की रक्षा के बिना मानव कल्याण की बातें सोचना भी निरर्थक है। उनके द्वारा बताया गया पर्यावरण रक्षा संदेश विश्व के लिए ऐसी अमूल्य धरोहर है, जिनके सहारे विश्व का कल्याण सुनिश्चित है। स्वच्छ वातावरण एवं शुद्ध पर्यावरण के बीच ही स्वच्छ तन, मन, ज्ञान और निर्वाण की प्राप्ति सुनिश्चित है। यही भगवान बुद्ध का संदेश है। भगवान बुद्ध की शिक्षाएं आज से लगभग 2500 वर्ष पहले की तुलना में अधिक प्रासंगिक है। क्योंकि आर्थिक भ्रम के कारण कुछ बौद्ध देशों के अपवाद को छोड कर सभी शब्द बडे पैमाने पर पर्यावरणीय क्षरण और हानि रहित जैविक विविधता की कीमत पर विकास की दिशा तय कर रहें हैं। पर्यावरण प्रदूषणों के कारकों में जनसंख्या की अभिवृद्धि, नगरीय एवं उद्योगीकरण के साथ उपभोक्तावाद का विशेष योगदान रहा है। गौतम बुद्ध द्वारा उपदिष्ट शिक्षा में इन प्रदूषक कारक तत्वों के निराकरण के सुन्दर मार्ग प्रशस्त करता है। भगवान बुद्ध की जीवनचर्याओं से नगरीकरण और औद्योगीकरण की समस्या का भी निदान संभव है। मध्यम मार्गी बन कर हम अति का परिहार कर उपभोक्तावाद को नियंत्रित कर सकते हैं, जिससे उपभोक्तावादी विषम संस्कृति अपनी हो सकती है और प्राकृतिक, सामाजिक पर्यावरण विप्रसन्न और प्रासंगिक हो सकता है। इसी से भवतु सब्ब मंगलम की परिकल्पना साकार हो सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सुमन एवं साथी, परम्परागत जीव जन्तु एवं पर्यावरण संरक्षण में बौद्ध धर्म, 1999, पृ0–34.
2. अंगारिक धर्मपाल, 1940, पृ0–71.
3. मुखोपध्याय।
4. मुले, 1988 वो कूटदंत सुत्त।
5. सुमन एवं साथी, पृ0–34.
6. शांति स्वरूप बौद्ध, 1998, पृ0–63.
7. चतुर्वेदी, 1956, पृ0–28, 29 और लाल, 1997, पृ0–105.
8. संयुक्त निकाय, पृ0–55 वो भा0 प्र0, वाराणसी।
9. सारत्यदीपनी टीका, भाग–2, पृ0–122, सं0सं0वि0वि0, वाराणसी।
10. दीर्घनिकाय, पृ0–154. (कुटदन्त सुत्त)
11. चुल्लवग्ग, पृ0–231.
12. सामंतपासादिका–महाधक्ख्धे छिन्नमत पाराजिकं।
13. महापदनासुत्त।
14. बुद्ध वंश, अगुंतर निकाय।
15. डॉ0 ध्रुव कुमार, बौद्ध धर्म और पर्यावरण, पृ0–27, 28.
16. अगुंतरनिकाय।
17. अट्ठकथा, विनय पिटक।
18. संयुक्त निकाय 1, पृ0–55 वो भा0प्र0, वाराणसी।
19. सारथ्यदीपनी टीका, भाग–2, पृ0–55.
20. मंझिमनिकाय 1, पृ0–55.